पद्मपुराण में नारी

डॉ. कविता कुमारी

वेद एवं पुराण भारतीय मनीषा की सारस्वत साधना के चरमोत्कर्ष के प्रतीक हैं। अनादि, अपौरूषेय नित्य–वेद जिस प्रकार तपःपूत अन्तः करण में प्रोद भासित हुाए थे, उसी प्रकार पुराण भी अतीतानागत–विप्रकृष्ट तत्वों के साक्षात्कर्त्ता विज्ञानियों द्वारा ग्रहण किये गए थे। सृष्टा ने विश्व–सृष्टि का पूर्व परिचय प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम पुराण का स्मरण किया था –

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रहमना स्मृतम।

वेदार्थ का उपबृंहण करने के कारण पुराण वेद के व्याख्याता है। अतः पुराणों की वेद–मूलकता स्वयं सिद्ध हैं। सृष्टि विज्ञान और मानवता के इतिहास का प्रतिनिधि त्व करने वाले पुराण लोकवृतानुगामी होने के कारण चिर–पुराण एवं चिर–नवीन है। शाश्वत जीवन क्रम तथा सृष्टि के उद्भव एवं विकास से सम्बद्ध विपुल ज्ञान के निधानभूत पुराण भारतीयों के लिए सदा से प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। अतः पुराणों का अध्ययन, मनन और चिन्तन वर्त्तमान समय में भी आवश्यक है।

प्राचीन भरतीय समाज का स्वरूप पुराणों में प्रतिबिम्बित होता है। वर्ण, आश्रम, संस्कार, विवाह इत्यादि सामाजिक संस्था के रूप में मान्य है। प्राचीन समाज इन्हीं संस्थाओं पर प्रतिष्ठित रहा है। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए प द्मपुराण के साक्ष्य पर समाज में नारियों की स्थिति का आकलन किया गया है।

पद्म पुराण में नारी की प्रतिष्ठा एवं धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में उसके महत्व के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। नारी के विषय में इस पुराण में दो तरह की परस्पर–विरूद्ध–विचारधारा का दर्शन होता है। एकतः सांसारिक जीवन–यात्रा की सफलता में नारी को प्रधान हेतु मानकर उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। अपरतः आध्यात्मिक अभ्युन्नति के मार्ग में नारी को बाधा–स्वरूप मानकर उससे विरत रहने का उपदेश दिया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर नारी–विषयक प्रशंसावचनों का आधिक्य दिखाई पड़ता है। संसार से सर्वथा विरक्त होकर साधना में रत रहने वाले व्यक्ति के लिए निश्चय ही नारी–संसर्ग पतन का कारण हो सकता है। किन्तु सांसारिक सुख–दुःख के बीच रहकर जीवन–यापन करते हुए निहित क्रियाओं के अनुष्ठानपूर्वक त्रिवर्ग साधन करने वाले गृहस्थ के लिए नारी का महत्व सर्वोपरि है। इस दृष्टि से भी नारी के शील स्वभावानुसार दो रूप बताए गए हैं– साध्वी और दुष्टा, पहली तो कुल का उद्धार करने वाली होती है और दूसरी पतन करने वाली। इसीलिए कहा गया है कि स्वर्ग, कुल, यश, अपयश, पुत्र दुहितृ, मित्र इत्यादि नारी के अधीन हैं। स्पष्टतः इस कथन से नारी की प्रतिष्ठा का परिज्ञान होता है।

पारिवारिक जीवन में नारी के तीन रूप विशेष महत्वपूर्ण है – कन्या, पत्नी और माता। पुराण में इन तीनों के धार्मिक और सामाजिक महत्व का विवेचन वर्णित है। कन्या के रूप में उसका गौरव इसलिए था कि विधि–पूर्वक योग्य वर

• **पी.एच.डी., स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार.**

के लिए उसका दान कर अनन्त पुण्य अर्जित किया जा सकता था। पुत्र की तुलना में कन्या जन्म की हीनता का साधक कोई भी प्रमाण इस पुराण में दृष्टिगत नहीं होता। कालक ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनसे कन्या के प्रति माता–पिता का अतिशय स्नेह और सद्भाव सूचित होता है। स्नेहाधिक्य के कारण विवाह के पश्चात् भी जामाता सहित कन्या को अपने घर में रखने की परम्परा थी। यद्यपि इसका परिणाम अच्छा नहीं होता था। क्योंकि कन्या के आचरण और शील के प्रति माता–पिता को चिन्ता बनी रहती थी। इस प्रसंग में ऐसी घटनाएँ पुराण में वर्णित हैं जो कन्या के पथ–च्यूत होने की पुष्टि करती है। कुछ ऐसे ही कारणों से पुत्र का जन्म कन्या की अपेक्षा अधिक स्पृहणीय था। तथापि कन्या का पर्याप्त समादर पितृ–कुल में होता था। विवाह के पश्चात् पति के घर जाने पर भी कन्या के सुख–दुःख की चिन्ता माता–पिता को बनी रहती थी।

भार्या के रूप में नारी की महत्ता का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है– तीर्थ यात्रा हेतु भार्या की स्वीकृति। पद्म पुराण का सुकला–चरित प्राचीन भारतीय समाज में नारी के समादर और धार्मिक दृष्टि से उसके माहात्म्य का प्रकाशन करता है। नारी के अभाव मैं पुरूष की अकेले की गयी सभी क्रियाएँ और धर्माचरण किस प्रकार निष्फल होते है? उक्त आख्यान इसका जीवन्त उदाहरण है। कृकल नामक वैश्य अपनी सती–साध्वी पत्नी सुकला को घर पर छोड़कर अकेले पवित्र तीर्थों की यात्रा किया था। इस अपराध के कारण उसे पुण्य के बदले पाप का भागी होना पड़ा था। उसके द्वारा दिए गए वचनों का भक्षण करने के कारण उसके पितृ–गण भी बन्धन युक्त हो गए थे।

इससे मुक्ति तब मिली जब उसने धर्मराज की आज्ञानुसार पत्नी–सहित तीर्थों का पूजन और पितरों का श्राद्ध किया।[4] भार्या के रूप में नारी की स्थिति के ज्ञापक उपर्युक्त प्रसंग के कुछ महत्वपूर्ण श्लोक अधोलिखित है –

एवं यो भार्यया हीनस्तस्य गेहूं वनायते।
यज्ञाश्चौव न सिध्यन्ति दानानि विविधानि च।।
भार्याहीनस्य पुंसौपि न सिध्यन्ति महाव्रतम्।
धर्मकर्माणि सर्वाणि पुण्यानि विविधानि च।।
नास्ति भार्यासमं तीर्थ धर्मसाधन हेतवे।
श्रृणुष्व त्वं गृहस्थस्य नान्यों धर्मो जगत्त्रये।।
यत्रभार्या गृहं तत्र पुरूषस्यापि नान्य था।
ग्रामे वाँत्यथावौरण्ये सर्वधर्मस्य साधनम् ।।
नास्ति मार्यासमं तीर्थ नास्ति भार्यासमं सुखम् ।।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च ।।
तस्माद् भार्या विना धर्मः पुरूषाणां न सिध्यति ।
भार्या विना हि यो धर्मः स एव विफलो भवति ।।

उक्त पद्यो में जहाँ नारी के अधिकार और पुरूष के जीवन में उसके महत्त्व का बोध कराया गया है, वहीं नारी के कर्त्तव्य का भी संकेत किया गया है। नारी का यह महत्त्व उसी स्थिति में संभव था जब वह भी पति के प्रति अपने

धर्म और कर्त्तव्य का सम्यक् पालन करती हो। इसी धर्म को पतिव्रत्य कहा गया है और इसका अनुष्ठान करने वाली नारी को पतिव्रता।

पति के निकट रहकर निरन्तर मनसा, वाचा, कर्मणा उसकी सेवा करना और अपने आचरण तथा व्यवहार से उसे सर्वदा प्रसन्न रखना नारी का परम कर्त्तव्य बताया गया है। पति जिस किसी भी स्थिति में हो उसकी उपेक्षा या त्याग नारी के लिए वर्जित है। पति से बढ़कर नारी के लिए अन्य कोई गुरू, पूज्य अथवा देवता नहीं है, पति ही उसके लिए सब कुछ है। पति के तुष्ट हो जाने पर सभी देवता, ऋषि और मनुष्य सन्तुष्ट हो जाते हैं। एक मात्र पति की आराधना से ही नारी को सुख, सौभाग्य, वस्त्रालंकार, यश तथा अन्य आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हो सकते हैं। अतः पति के विद्यमान रहने पर नारी के लिए अन्य धर्म की कोई अपेक्षा नहीं हैं। अन्य धर्म का आश्रयण करने पर सम्पूर्ण कृत्य निष्फल हो जाते हैं और संसार में वह पुंश्चली कही जाती है। पुराण का कथन है कि नारी का रूप, यौवन और भूमण्डल पर उसका अवतरण पति के लिए होता है। अतः पति के प्रति अर्पित हो जाने में ही उसके जीवन, रूप और यौवन की सार्थकता है। महाकवि कालिदास के अनुसार वह रूप–सम्पदा व्यर्थ है जो प्रिय को आकृष्ट न कर सके, उसके मन को रिझा न सके। नारी के सौन्दर्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है– प्रियतम के असीम स्नेह की प्राप्ति। संभवतः इसीलिए पुराण का निर्देश है कि पति से पृथक रहने पर पतिव्रता को श्रृंगार–रचना, आभूषण धारण तथा अन्य साज–सज्जा का परित्याग करना चाहिए। पति की अनुपस्थिति में अपने शरीर एवं रूप को किसी भी तरह से मण्डित करने का उपक्रम करने वाली नारी अपने धर्म से च्यूत हो जाती है। सामान्य रूप से पति को छोड़कर अन्यत्र जाने या अन्य कार्य में व्याप्त होने से भी नारी के व्रत में न्यूनता आ सकती है। अतएव पति के समीप रहने की प्रेरणा दी गयी है। इसके विरूद्ध आचरण करने पर प्राप्त होने वाली कुपरिणाम का बोध कराने के लिए मथुरा नरेश उग्रसेन की पत्नी पद्मावती का आख्यान पद्मपुराण में वर्णित है।

पतिव्रता की विशेष प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि जैसे– नदियों में गंगा, मनुष्यों में राजा और देवों में भगवान् विष्णु श्रेष्ठ है, वैसे ही स्त्रियों में पतिव्रता श्रेष्ठ है –

नदीनां जाहनवी श्रेष्ठा प्रमदानां पतिव्रता ।
मनुष्याणां प्रजापालो देवानां च जनार्दनः ।। पदम. सृष्टि – 47/50

यहाँ गंगा की उपमा से पतिव्रता में निरातिशय पवित्रता, राजा की उपमा से सामर्थ्य और विष्णु की उपमा से देवत्व तथा पूज्यता की व्यञ्जना होती है। पति के हित–साधन में नित्य निरत रहने वाली नारी पति एवं पितृ कुल के सैकड़ों पुरूषों का उद्धार करती है। अन्त में स्वर्ग सुख का अनुभव कर अनेक जन्म तक राज–पत्नी के रूप में सांसारिक सुखों के भोग से संतुष्ट होकर मोक्ष को प्राप्त करती है। पद्मपुराण में एक ऐसी पतिव्रता नारी का उल्लेख मिलता है जिसने पति–सेवा के बल पर प्रत्यक्ष व परोक्ष अतीतानागत सभी घटनाओं और वस्तुओं का ज्ञान रहता था। पतिव्रता के अद्भूत सामर्थ्य रखनेवाली ब्राह्मणी सैव्या की कहानी प्रसिद्ध है। इस पतिव्रता ने कुष्ठ रोग से ग्रस्त अपने पति की कामेच्छा पूर्ति हेतु वेश्या की सेवा कर उसे प्रसन्न किया। पुराण का कथन है कि पतिप्राणा, निरन्तर पति के हित–साधन में तत्पर रहने वाली पतिव्रता देवों और ब्रह्मवादी मुनियों की भी आराध्या है –

पतिव्रता पतिप्राण सदा पत्युर्हिते रता ।

देवानामपि सौराध्या मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।। पदम. सृष्टि. 48/5

कन्या और पत्नी के पश्चात् पुराण में माता के रूप में नारी का दर्शन होता है। मातृत्व नारी जीवन की चरम् परिणति है। इसके अभाव में मानों स्त्रीत्व व्यर्थ है। सन्तानोंत्पादन द्वारा पितृ ऋण से मुक्ति विवाह का परम लक्ष्य थी। अतः संतान उत्पन्न करने में जो नारी समर्थ न थी, उसका परिवार और समाज में अपेक्षित आदर नहीं होता था। स्वयं नारी समाज को मातृत्व के अभाव में अपने भीतर आत्महीनता की अनुभूति प्रत्यक्ष है। महाभारतकालीन समाज में भी माता के रूप में नारी को सर्वोच्च स्थान दिया गया था–

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः ।।
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमः प्रियः ।। महाभारत, शांति– 258/25–29

यज्ञ, तीर्थ, दान तथा अन्य विविध पुण्यकर्मों का फल माता–पिता की सेवा मात्र से प्राप्त हो सकता है। पुत्र के लिए माता–पिता से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है। ये दोनों इहलोक और परलोक में भी नारायण के समान हैं –

नास्ति मातुः परं तीर्थ पुत्राणां च पितुस्तथा ।
नारायण समावेताविह, चौव परत्र च ।। पद्म. भूमि. –63/13

माता–पिता की सेवा न करने वाले व्यक्ति का वेदाध्ययन, यज्ञ, दान और पूजन सभी व्यर्थ हो जाते हैं। महाभारत में युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए भीष्म का कथन है कि "आचार्य दस श्रोत्रियों से श्रेष्ठ है, दस आचार्यों से उपाध्याय, दस उपाध्यायों से पिता और पिता से भी दसगुणा माता है। माता समस्त पृथ्वी को भी अकेली अपनी गुरूता से अभिभूत कर सकती है। अतः माता से बढ़कर कोई गुरू (पूज्य) नहीं है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन समय में भी नारियों का स्थान सर्वोच्च था तथा सभ्य व सुसंगठित समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

संदर्भ :

- पद्म भूमि., 63/13.
- पदम. सृष्टि, 47/50, 48/5.
- महाभारत, शांति, 258/25–29.